P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika
E: ISSN NO.: 2349-980X Vol-III* Issue-XI*July-2016

बघेलखण्ड कला, संस्कृति और लोक कलाओं की विकास यात्रा

सारांश

बघेलखण्ड में कला, संस्कृति और लोक कलाओं की विकास यात्रा विविधताओं से भरी है। जब से इस क्षेत्र की सभ्यता विकसित हुई, तब से लेकर अब तक सदियाँ गुजरीं कई दौर आये। इन काल खण्डों का प्रभाव जन–जीवन और उनकी शैली में पड़ा। कई दौर ऐसे थे जिनमें सभ्यता और संस्कृति का उद्‌भव, विकास हुआ, ऐसे भी कई दौर आये, जब इन परम्पराओं को विविध तरीके के हमले ओर आघात झेलने पड़े और सभ्यता के विभिन्न स्वरूपों पर इनका असर पड़ा। देखा जाये तो रीवा राज्य के महाराजाओं ने भी संस्कृत व हिन्दी साहित्य को अविस्मरणीय योगदान दिया, महाराजा विश्वनाथ सिंह रचित ''आनंद रघुनंदन'' को हिन्दी का पहला प्रामाणिक नाटक माना जाता है। साहित्य और ''रंगकर्म'' के साथ, यहां के संगीत की परम्परा के चरमोत्कर्ष का आंकलन इसी से किया जा सकता है कि संगीत सम्राट तानसेन का कर्मस्थल राज्य ही रहा, यहीं से उनकी ख्याति दिल्ली सल्तनत तक पहुॅची और सम्राट अकबर ने तत्कालीन महाराजा रामचन्द्र को ''तानसेन'' को दिल्ली दरबार में पहुॅचने हेतु आदेषित किया। बघेलखण्डी लोग गीत कविता के उत्साही हैं। यहां की लोक गाथाएं, लोक कथाएं लोकोक्तियां, बघेलखण्डी लोक संस्कृति, इतिहास, साहित्य के संवाहक हैं। बघेलखण्ड की पारम्परिक लोक कलाओं में बिरहा, राई, केहरा, दादर, कोलदहका, कलसा, केमाली, करमा, सैला, नृत्य प्रमुख हैं।

मुख्य शब्द : बघेलखण्ड, संस्कृति, विकास यात्रा, विविध रंग, इतिहास, परम्परा, लोक कला, विविध रंग,

अमित शुक्ल
सहायक प्राध्यापक,
हिन्दी विभाग,
शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय,रीवा,
मध्य प्रदेश

प्रस्तावना

बघेलखण्ड में कला, संस्कृति और लोक कलाओं की विकास यात्रा विविधताओं से भरी है। जब से इस क्षेत्र की सभ्यता विकसित हुई, तब से लेकर अब तक सदियाँ गुजरीं कई दौर आये। इन काल खण्डों का प्रभाव जन–जीवन और उनकी शैली में पड़ा। कई दौर ऐसे थे जिनमें सभ्यता और संस्कृति का उद्‌भव, विकास हुआ, ऐसे भी कई दौर आये, जब इन परम्पराओं को विविध तरीके के हमले ओर आघात झेलने पड़े और सभ्यता के विभिन्न स्वरूपों पर इनका असर पड़ा। देखा जाये तो रीवा राज्य के महाराजाओं ने भी संस्कृत व हिन्दी साहित्य को अविस्मरणीय योगदान दिया, महाराजा विश्वनाथ सिंह रचित ''आनंद रघुनंदन'' को हिन्दी का पहला प्रामाणिक नाटक माना जाता है। ''आनंद रघुनंदन'' की रचना अपने आप में यह प्रमाणित करने का सामर्थ्य रखती है कि उसके समकालीन ''रंगकर्म'' की स्थिति कितनी पुष्ट और विकसित रही होगी। नाटक के रूप में मंचित की जाने वाली ''रामलीला'' और भगवान राम के प्रणय प्रसंग पर आधारित ''समैय्या'' की परम्परा अब भले थम गयी हो, पर उसके साक्ष्य और प्रमाण अभी जीवित हैं। बघेलखण्ड का रंगकर्म लोक–परम्पराओं के साथ भी जुड़ा रहा है। साहित्य और ''रंगकर्म'' के साथ, यहां के संगीत की परम्परा के चरमोत्कर्ष का आंकलन इसी से किया जा सकता है कि संगीत सम्राट तानसेन का कर्मस्थल राज्य ही रहा, यहीं से उनकी ख्याति दिल्ली सल्तनत तक पहुँची और सम्राट अकबर ने तत्कालीन महाराजा रामचन्द्र को ''तानसेन'' को दिल्ली दरबार में पहुॅचने हेतु आदेशित किया। तानसेन के ध्रुपद में बांधव गद्‌दी संगीत में ध्रुपद गायकी की परम्परा, भले अब किसी घराने से जोड़ दी गयी हो, पर मूलतः इसका उद्‌भव स्थल यही क्षेत्र है।[1] बघेलखण्ड में शिल्प और स्थापत्य कला का भी गौरव पूर्ण इतिहास है। विश्वविख्यात परातत्वविद् सर कनिघंम के कथनानुसार यदि पुरातत्व के क्षेत्र में गोर्गी और भरहुत को हटा दिया जाये, तो न सिर्फ भारत बल्कि विश्व का पुरातात्विक इतिहास अधूरा रह जायेगा। इस क्षेत्र ने कल्चुरीकाल मे शिल्प ओर स्थापत्य का स्वर्णिम दौर रहा है। उस स्वर्णिम दौर के शैल–चित्र और देउर–कोठार के

के स्तूप अपने गौरवशाली अतीत की याद दिलाते हैं। बघेली क्षेत्र की लोक कलाएं इस क्षेत्र के बाहर प्रायः अल्पज्ञात रही हैं, जबकि वास्तविकता यह है कि किसी भी अन्य अंचल के लोक कला रूपों की तरह यहां की पर्याप्त विविधता में उनका वैभव उपलब्ध है। बघेलखण्ड की लोक कलाओं के सर्वेक्षण के दौरान लगातार यह महसूस होता रहा है कि यहां की लोक कलाएं अभी अधूरी हैं। यहां का चाहे जन जीवन हो, यहां की लोक संस्कृति हो, यहां की कला परम्परा हो या चाहे वाचिक परम्परा हो यह सब सबसे अलग ठेठ अपने परम्परागत रूप में मौजूद है और यही बघेलखण्ड की लोक कलाओं का सुखद आश्चर्य पहलू भी है। बघेलखण्ड की लोक कलाएं अभी अपनी जातीय परम्परा के बहुत नजदीक दिखाई देती हैं। उनका स्वरूप अभी भी ताजगी से परिपूर्ण और बुनियादी रूप से आदिमता लिये हुए है। बघेलखण्ड की लोक कलाओं के रूपाकार और प्रतीक ठेठ अपनी जातीय परम्परा में वैसे ही है, जैसे उन्होंने अपने जन्म के मूल समय में जो रूप ग्रहण किया था। भौतिक आक्षेपों से सर्वथा अप्रभावित जीवन की कला के इन आत्मिक उच्छवासों की ताजगी अभी भी चम्पा के ताजे फूलों की सुगन्ध की तरह महसूस की जा सकती है। बघेलखण्ड के जन जीवन में नृत्य, नाट्य, गायन, संगीत, चित्रकला विभिन्न शिल्प आदि का समावेश अभी भी दिखाने की दृष्टि से नहीं मौजूद है, वह जीवन का एक अभिन्न अंग है, इसीलिए बघेलखण्ड की लोक कलाओं में जनाधार का आत्मविश्वास, आत्मबल और आत्म शौष्ठव सहज रूप में देखा जा सकता है। बघेलखण्ड की लोक कलाओं की अपनी मौलिक पहचान भी इसलिए है। बघेलखण्ड का लोक संगीत यहां की मिट्टी की सोंधी सुगन्ध की तरह है। यहां के लोक गायन का मूल स्वर धरती, प्रकृति की अनुकूलता में फूटता है।

उद्येश्य व महत्व

यहां के लोकनाट्य जीवन के प्रत्येक अंक की व्याख्या करते प्रतीत होते हैं, यहां के लोकचित्र अपनी सहज वृत्ति में एक रेखीय और ज्यामितीय है। जिनके अर्थ और आशय किसी तंत्र प्रतीकों के माध्यम से जीवन की मांगलिकता में खुलते हैं। यहां के लोकगीत जीवन का मुक्त लोक काव्य है। बघेलखण्डी लोग गीत कविता के उत्साही हैं। यहां की लोक गाथाएं, लोक कथाएं लोकोक्तियां, बघेलखण्डी लोक संस्कृति, इतिहास, साहित्य के संवाहक हैं। बघेलखण्ड की पारम्परिक लोक कलाओं में बिरहा, राई, केहरा, दादर, कोलदहका, कलसा, केमाली, करमा, सैला, नृत्य प्रमुख हैं। बघेलखण्ड में लोक नाट्यों की परम्परा विलुप्त होने के कगार पर है, फिर भी मनसुखा, हिंगाला, जिंदबा लकड़बग्गा, रामलीला, नौटंकी, कृष्णलीला, रास, नेफहाई का झगर, छाहुर, समय्या आदि लोक नाट्य पहले कभी अपनी पारम्परिक प्रस्तुतियों में चरम उत्कर्ष पर थे, आज इनका रूप कहीं–कहीं विखण्डित रूप में दिखाई दे जाता है। बघेलखण्ड में रामलीला की अनेक पारम्परिक मंडलियां हैं जिनमें खजुरीताल के महन्त श्री रामभूषणदास जी की आदर्श रामलीला मंडली अपनी पारम्परिक प्रस्तुति और शैली के रूप में सर्वश्रेष्ठ है। बघेलखण्ड की पारम्परिक लोकचित्रों की श्रृंखला जीवन की मिथकीय व्याख्या की चित्र शैलियां हैं। बघेलखण्ड के शिल्पों में आदिम रूपाकारों की उपस्थिति उसके सौन्दर्य को बढ़ाने वाली है। बघेलखण्ड की लोक कलायें निम्नानुसार आकर्षण का केन्द्र हैं[2]

बिरहा नृत्य

बिरहा गायन के साथ नृत्यवृत्ति भी है। बिरहा नृत्य का कोई समय निष्चित नहीं होता। मन चाहे जब मौज में बिरहा किया जा सकता है। विशेषकर ब्याह–शादियों और दीवाली में बिरहा नृत्य होता है। बिरहा में अकेले पुरुष भी नाचते हैं और कभी–कभी स्त्रियां भी उसमें शामिल होती हैं। जब स्त्री–पुरुष नाचते हैं, तब सवाल–जवाब होते हैं। बिरहा की दो पंक्तियां दोहे की तरह लम्बी राग लेकर नर्तक उठाता है और दोहे के अंत में नृत्य तीव्र गति से चलता है। सवाल–जवाब गीत में होते हैं। यह क्रम पुरुष और महिलाओं के बीच चलता रहता है। सवाल–जवाब की पंक्ति में अंतिम छोर पर वाद्य नगड़िया, ढोलक, शहनाई, घनघना कर बज उठते हैं। इधर स्त्री और पुरुष नर्तक गति के साथ नृत्य करते हैं। स्त्रियों के मुख पर घूंघट पड़ा रहता है। हांथ और पैरों की मुद्राएं दर्षनीय होती हैं। ताल की समाप्ति पर फिर यही क्रम शुरू होता है। बिरहा नृत्य बघेलखण्ड में बसी सभी जातियों में प्रचलित है। अहीर, तेली, गड़रिया, बारी जातियों में बिरहा नृत्य विशेष लोकप्रिय है। अहीर, गड़रिया, बारी जाति के लोग गॉव के ठाकुर या अन्य बड़े आदमियों के घर जाकर बिरहा गाकर नाचते हैं। यह प्रथा बघेलखण्ड में दादर ले जाना कहलाती है। दीपावली के अवसर पर गड़रियों में गायन जगाने और नाचने–गाने की प्रथा है। हांथ में मोर पंख, रंगीन डन्डे और बाजे होते हैं। पैरों और कमर में घंटियां बांधे उल्लास में उछलते–कूदते बिरहा की ऊँची–ऊँची ताने छेड़ते द्वार–द्वार पर गाना बजाना, त्यौहारी–लेना गड़रियों के बिरह नाच की विशेषता है। पुरुष सफेद घेरदार रंग–विरंगे फुंदों की जाली बॉधते है, सिर पर पगड़ी या साफा बॉधा जाता है। बिरहा बघेलखण्ड का प्रतिनिधि नाच और गान है।

राई नृत्य

बुन्देलखण्ड की तरह बघेलखण्ड में भी राई नृत्य का प्रचलन है। दोनों अंचलों में राई में बहुत फर्क है। बुन्देलखण्ड में बेड़नी और मृदंग राई की जान होती है। बघेलखण्ड में राई, ढोलक और नगड़िया पर गाई–बजाई जाती है। पुरुष स्त्री वेश धारण कर नृत्य करते हैं। राई विशेषकर अहीर नाचते हैं। कहीं–कहीं ब्राह्मण जाति की स्त्रियों में भी राई का प्रचलन है। पुत्र जन्म पर प्रायः वैश्यों के यहां भी यह नृत्य होता है। स्त्रियां राई में हांथों, पैरों और कमर की विशेष मुद्राओं में नाचती हैं। राई गीत श्रंगारपरक होते हैं, परन्तु बुन्देलखण्ड की तरह यौवन और श्रृंगार का उद्दाम आवेग और तीव्रगति यहां नहीं होती। राई गीत का प्रारम्भ प्रायः इस तरह से होता है,

''राई गाइउ ना जाइ,
राई गाइउ ना जाइ,
मारे शरम के मारे''

राई नृत्य में पुरुष स्त्रियों की वेषभूषा और गहने पहने होते हैं। पुरुष धोती, बाना, साफा और पैरों में घुंघरू पहनते हैं। राई नृत्य अहीर लोगों के साथ, कोल गड़रिया और बारी जाति में भी प्रचलित है।

केहरा नृत्य

केहरा नृत्य स्त्री और पुरुष दोनों अलग–अलग शैली में करते हैं, इसकी मुख्यताल केहरवा से इसका नाम केहरा नाच पड़ा। केहरा के मुख्य वाद्य ढपला, बांसुरी हैं। जब दो या तीन ढपलों पर एक साथ केहरवा ताल बजाया जाता है और बांसुरी की मधुर ताल छिड़ जाती है, तब पुरुष नर्तक के हांथ और पैरों की नृत्य गति असाधारण हो उठती है। महिलाओं के हांथों और पैरों की नृत्य गति असाधारण हो उठती है। महिलाओं के हांथों और पैरों की मुद्राओं का संचालन और गतिमय हो जाता है। नृत्य के पहले पुरुष केहरा गाते हैं। नृत्य के समय पहुँचने पर मुख्य नर्तक कोई दोहा कहता है और दोहे की अंतिम कड़ी के साथ हांथों के झटकों के साथ पूरी गति से नृत्य प्रारंभ होता है। नृत्य और संगीत का सामन्जस्य लोगों में इतना जोष भर देता है कि कितने ही लोग बरबस केहरा नाचने लगते हैं। जिस तरह पुरुष नृत्य करने के पूर्व गाते हैं उसी प्रकार स्त्रियां नृत्य करने के पहले केहरा गाती हैं। स्त्रियां नाचते–नाचते फुरहरी लेती हैं। फुरहरी केहरा की एक खास मुद्रा है। फुरहारी में स्त्रियां हांथ में हांथ देकर चक्री लेती हैं। केहरा नाच का प्रचलन सारे बघेलखण्ड की हर जाति में है, लेकिन बारी जाति का केहरा नाच विशेष लोकप्रिय है।

दादर नृत्य

दादर नृत्य बघेलखण्ड का प्रसिद्ध नृत्य है। दादर गीत अधिकतर पुरुषों के द्वारा खुशी के अवसर पर गाये जाते हैं और कहीं पुरुष नारी वेश में नाचते हैं। दादर नृत्य–गीत के लिये बारी, कोल, कोटवार, कहार, चमार विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। ये जातियां दादर लेकर निकलती हैं। दादर एक प्रकार का जातिगत जुलूस है, जिसमें पुरुष नाचते गाते वाद्य बजाते निकलते हैं। दादर के मुख्य वाद्य नगड़िया, ढोल, ढोलक, ढप और शहनाई हैं। कभी–कभी दादर में महिलायें भी नाचती हैं और पुरुष वाद्य बजाने के साथ गाते हैं। महिलायें प्रायः घूँघट में नाचती हैं। पैरों में घुंघरू बॉधती हैं। हांथ पैरों और कमर की मुद्राओं से दादर नृत्य परम्परा का सफल निर्वाह करती हैं। जातीय गीतों के साथ दादर नृत्य में कुछ निजी विषेषतायें होती हैं। इन जातीय विशेषताओं के कारण ही कोलहाई दादर, बरिहाई दादर, चमरहाई दादर आदि नाम से दादर की प्रतिष्ठा पूरे बघेलखण्ड में हैं। दादर नृत्य में बजायें जाने वाले वाद्यों की लय–ताल और घुंघरूओं की घनघनाहट दूर–दूर बसे लोगों को नृत्य तक खींच लाती है। विवाह में घराती और बराती दोनों की ओर से गाजे–बाजे के साथ दादर नृत्य किया जाता है।

कलसा नृत्य

बारात की अगवानी में सिर पर कलश रखकर नाचने की परम्परा अहीरों, मुड़ता, तेलियों, गड़रियों में समान रूप से प्रचलित है। द्वार पर स्वागत की रस्म होने के पश्चात कलसा नृत्य शुरू होता है। नगढ़िया, ढोलक, शहनाई की समवेत और लोक धुन पर कलसा नृत्य चलता है। नर्तक की कोई खास वेशभूषा नहीं होती, बल्कि परम्परागत धोती, बंडी, साफा पहनकर यह नृत्य किया जाता है। नर्तक पैरों में घुंघरू बॉधता है। गुजरात के भवाई नृत्य की तरह कलसा नृत्य में सिर पर सात घड़े रखकर नाचने की परम्परा प्राचीन है। सिर पर सात घड़ों के साथ शरीर का संतुलन कलसा नृत्य की खासियत है। नृत्य में नर्तक कठिन से कठिन मुद्राओं को बड़ी सहजता से लय–ताल के संतुलन के साथ साधता चलता है। पुरुष नर्तक के साथ कभी–कभी महिला भी नाचती है।

केमाली नृत्य

केमाली नृत्य को साजन–सजनई नाम भी दिया गया है। इस नृत्य में स्त्री पुरुष दोनों केमाली विवाह के अवसर पर किया जाता है। केमाली गीत सवाल–जवाब के शैली में होते हैं। साजन–सजनई गीत बड़े कर्ण लोकप्रिय और भावप्रवण होते है। साजन–सजनई लम्बे गीत होते हैं। गीत में सजनई गीत एक ताल और दोहरी ताल पर एक दूसरे के अन्तराल में चलते हैं, इससे गीत के उतार चढ़ाव में असाधारण आकर्षण बढ़ जाता है। केमाली गीत और नृत्य रात–रात भर चलते हैं। कोटवारों और चमारों की साजन–सजनई बघेलखण्ड में अधिक प्रसिद्ध है।

कोल दहका

कोलों के नाच को कोल दहका कहते हैं। कोलहाई नाच बघेलखण्ड का एक खास नाच है। इसमें पुरुष वादक और गायक दोनों भूमिकाएं निभाते हैं। महिलायें नाचती हैं और गाती भी हैं। चेहरे पर घूंघट रहता है। गीतों के सवाल–जवाब होते हैं, महिलाओं द्वारा गाये सवाली का जवाब पुरुष गायकों को देना होता है। कोलदहका के केन्द्र में महिलाओं का नृत्य और पुरुषों को ढोलक वादन होता है। तीन, चार या पांच तक ढोलकें तीव्रता से बजाई जाती हैं। नगड़िया की संगत ढोलकों के बीच कुछ अलग ही समा बॉध देती है। झांझ लयताल के साथ मधुर झंकार करती है। पुरुष उच्च स्वर में गाते हैं। बीच–बीच में जोर का हुंकार नृत्य को गति देता है। महिलायें पैरों की गति के साथ अंगुलियों को नचाते हुए नृत्य करती हैं। कमर झुकती है। सम पर खड़ी होकर गोल घूमती हैं। ढोलक की गति जितनी तेज होती है, उतना ही तेज नृत्य होता है। कोलदहका नृत्य की खासियत इसके संगीत की थिरकती लय है। यह कोलों का प्रतिनिधि नाच है। महिलायें अपनी पारम्परिक वेशभूषा और गहने पहनकर पैर में घुंघरू बांधकर नाचती हैं। पुरुष का वेश साधारण रोजमर्रा का होता है। विवाह आदि त्योहारो पर कोलदहका नाच अवश्य होता है। महिला के साथ एक पुरुष विचित्र वेश धारण कर नृत्य करने की परिपाटी प्रायः देखी जाती है। कोलदहका की रात–रात भर की बैठके होती है, न गाने वाले उठने का नाम लेते हैं न कोलीन नाचते–नाचते थकान का कोई चिन्ह चेहरे पर आने देती हैं। कोलदहका के एक पंक्ति के गीत घंटों उतार–चढाव के साथ चलते हैं। कोलदहका बघेलखण्ड के कोलों की कला की अपूर्व धरोहर है।

आदिवासी करमा–सैला नृत्य

बघेलखण्ड की कुल आबादी में चालीस प्रतिशत जनजातियां निवास करती है। जनजातियों में गोड़, बैगा अधिक हैं। आदिवासियों के नृत्यों में करमा, सैला, सुआ, अटारी, हिंगाला नैनजुगानी प्रमुख हैं। इनमें करमा और सैला अधिक प्रसिद्ध हैं। करमा नृत्य करम राजा की करम रानी को प्रसन्न करने के लिये किया जाता है। इनमें प्रायः आठ पुरुष और स्त्रियां नृत्य करती हैं। युवक–युवतियां गोलार्द्ध बनाकर आमने–सामने खड़े हो जाते हैं। एक दल गीत उठाता है, दूसरा दल दुहराता है। मांदर बजता है।

नृत्य में युवक–युवती आगे पीछे चलने में एक दूसरे के अंगूठे को छूने की कोशिश करते हैं। शरद की चांदनी रातों में सैला नृत्य किया जाता है। हांथ में लगभग सवा हांथ के डण्डे के कारण इसका नाम सैला नृत्य पड़ा। सैला आदिदेव को प्रसन्न करने के लिये नाचा जाता है। कहते हैं सरगुजा की रानी से अप्रसन्न होकर आदिदेव बघेसुर अमरकंटक चले गये थे, वहां के बांसों को काटकर इस नृत्य का प्रचलन किया गया।

बघेलखण्ड के लोकगीत

बघेलखण्ड के लोकगीतों की बहुत समृद्ध परम्परा है। संस्कार गीतों में सोहर, बरुआ, मुंडन, विवाह, द्वारगमन, ऋतु गीतों में कजली झूला, फाग, होरी, ढोंढिया, कबीर, दादर, पूजा गीतों में जवा के गीत भगत हिंगाला, भजन। खेल गीतों में पुतरी पूजन, कबड्डी के गीत, जतवा गीत, रोपा गीत, के अलावा कई जातीय गीत पूरे बघेलखण्ड में गाये जाते हैं जो अत्यन्त लोकप्रिय रहे हैं। बघेलखण्ड में बसे आदिवासियों के गीतों में कर्मा, सैला, दादर, नैनजुगानी, वनगिता, ठढ़गिता, गलमौजा, सुआ आदि प्रमुख हैं।बिरहा और विदेशिया गीत समूचे बघेलखण्ड में अपनी मौलिक सैली में गाये जाते हैं। बिरहा और विदेशिया श्रृंगारिक होते है। गड़रिया, तेली और कोटवार विदेशिया गाने में माहिर जातियां है। तेलियों का बिरहा बिना वाद्य के सवाल–जवाब के रूप में गाया जाता है। विदेशिया की राग लम्बी और गम्भीर होती है। कानों में उंगली लगाकर बिरहा गाने की सैली प्राचीन है। गाते समय गायक भौंहों को नचाते हैं, ऐसे लगता है जैसे भौंहों से कोई प्रश्न पूंछ रहा है। बिरहा और विदेशिया जंगल या सुनसान–एकान्त जगह में पाये जाने वाले गीत हैं।

बघेली लोकगायन : सरमन

सरमन बघेलखण्ड का एकमात्र प्रतिनिधि लोकगायन है, जिसे प्रतिष्ठा के साथ किसी अंचल के लोकगायन के सम्मुख रखा जा सकता है। सरमन ''श्रवण–कुमार'' की लोक गाथा है। समस्त बघेलखण्ड में वसुदेवा नामक जाति सरमन कथा गाती हैं। वसदेवा मांगने खाने वाली जाति है। फुरसत के समय में चटाई बुनने का कार्य करती हैं, लेकिन अधिक समय सरमन गाकर व्यतीत करती हैं। वसुदेवों की आर्थिक हालत ठीक न होने के कारण ये रायपुर, बिलासपुर, रायगढ़ तथा छत्तीसगढ़ के अन्य अंचलों में दीवाली के बाद मांगने खाने चल देते हैं और फागुन में ये लोग अपने घरों को लौट आते हैं। ललपा, लिपनिया, बैकुन्ठपुर, पुतलिखी, पटपरा, देवतलाब, सतहोरी, पिपराही, चुरहट, भटहा आदि गांवों में बसदेवा अपनी अलग बस्ती बनाकर रहते हैं। सरमन गायन बघेलखण्ड की अपनी निजी विधा है। कभी अकेले या दो गायक मिलकर सरमन गाते हैं। वैसे दो गायकों से ही सरमन के गायन की पूर्णता होती है। एक गायक एक पंक्ति उठाता है तथा दूसरी पंक्ति समाप्त होनें या न होनें तक उसे उसी राग में तेजी से दुहराता है और पीछे से 'हरगंगे' की टेंक पर पंक्ति के बाद लगता है। सरमन के वाद्य परम्परागत, अत्यन्त साधारण और मौलिका होते हैं। गुल्ली के आकार की विशेष लकड़ी की 'चुटकी' और लोहे की पोली गोल झनझनाने वाली 'पेंजन' 'मंजीरा' पर सरमन गाया जाता है। 'चुटकी' की ठक–ठक और 'पेंजन' की झन–झन की मधुर लयकारी पर सरमन की करुण गाथा चलती है। किवदंती है कि श्रवण कुमार की मृत्यु–पश्चात राजा दशरथ ने श्रवण के अन्धे माता–पिता की इच्छा अनुसार सबसे पहले बसदेवाओं की गायों का दान किया था, तब से बसुदेवा श्रवण कथा गाते हैं। बसुदेवा सरमन के साथ करन कथा, मोरध्वज, गोपीचंद भरथरी, भोलेबाबा आदि लोक गाथायें भी गाते हैं।

बघेली लोक नाट्य

बघेलखण्ड में कोई प्रतिनिधि लोक नाट्य नहीं है, जो वर्तमान रंग मंच की आवश्यकताओं को पूरा कर सके। फिर भी बघेलखण्ड लोकनाट्यों से खाली नहीं कहा जा सकता। जिंदवा, मनसुख, हिंगाला, लकड़बग्घा, नौटंकी बघेलखण्ड के परम्परागत प्रचलित लोक नाट्य हैं। जिंदवा, विवाह में महिलाओं के द्वारा किये जाने वाले भिन्न–भिन्न स्वांग हैं। मनसुखा रामलीला का ग्रामीण रूप है। हिंगाला और लकड़बग्घा आदिवासियों के नाट्य हैं। रामलीला बघेलखण्ड का लोकप्रिय नाट्य है। महंत श्री रामभूषणदास खजुरीताल की रामलीला देश की सबसे बड़ी रामलीला मंडली है। पूरे बघेलखण्ड में 80 के लगभग रामलीला मंडलियां सक्रिय रही हैं। गुढ़ जैसे गांव में अनेकों रामलीला मंडलियां मौजूद हैं। बघेलखण्ड में बिसाती, लीला, गेंदलीला, वैद्यलीला और नर्तकिन जैसे लोकनाट्य प्रचलित रहे हैं। नरसी मेहता का बघेली लोक नाट्य रूप गांव में कही–कही अभी भी देखने को मिलता है।

बघेली लोकचित्र

बघेलखण्ड की लोकचित्र परम्परा समृद्ध है। बघेलखण्ड और उत्तरप्रदेश का सांस्कृतिक अंतः सूत्र एक ही है, इसलिये कोई आश्चर्य नहीं कि बघेलखण्ड पर उत्तरप्रदेश के हर लोक व्यवहार का पूरा–पूरा प्रभाव हो। लोकचित्रों में इसका प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है फिर भी बघेलखण्ड के पारम्परिक लोकचित्रों की अपनी पहचान अलग से की जा सकती है। कोहवर, हलछठ, करवा चौथ, नागपंचमी, छठी, दीवाली चित्र आदि बघेलखण्ड के परम्परागत चित्र हैं। बघेलखण्ड के गांवों मे दीवारों पर मिट्टी और गोबर से कलात्मक रूपांकन बनाये जाते हैं। ऐसे रूपांकनों में चिड़ियां, मोर, चांद, सूरज, हांथी, फल–पौधे, तुलसी क्यारी, दीपाई, शेर आदि तथा देवी देवताओं की आकृतियां प्रमुख होती हैं। यह रिलीफ वर्क घर की महिलायें और पुरुष करते हैं। बघेली के लोकचित्रों को तीन कोटियों में विभाजित किया गया है :– पशु–पक्षियों तथा जीव जन्तुओं के चित्र, संस्कारों के समय बनाये जाने वाले चित्र तथा अवसरों व त्योहारों के समय के चित्र।

पशु–पक्षी मानव के सृष्टि–संरचना काल के सहचर हैं। कृषि युग का प्रादुर्भाव होते ही मानव ने इनसे हिंसा न कर उन्हें हितैशी स्वीकार कर इनका पालन–पोषण प्रारंभ कर दिया, तथा अपने दीवारों पर तोता, मैना, हांथी, गाय, बैल, आदि का चित्र बनाकर उनकी पूजा व इनके प्रति आदर–भाव प्रकट करना प्रारंभ कर दिया। ये चित्र बनते–बिगड़ते रहते हैं। ग्रामीण लोग अपने घरों के द्वार पर या आंगन में मिट्टी या गोबर से सुन्दर रंग दिया करते हैं। कत्थे या हल्दी का घोल भी रंग–रोगन के काम में कहीं–कहीं प्रयोग किया करते हैं। आदिवासियों की झोपड़ियों एवं घरों की दीवारों पर नृत्य

करती हुई युवती तथा धनुष–बाण लिये हुये युवक का चित्र बनाया जाता है। यह चित्र विशेषकर व्याह–संस्कार के अवसर पर बनाया जाता है। इससे संबंधित प्रचलित एक लोक गीत इस चित्रकला की सार्थकता व प्रियता की ओर अधिक सजीव बना देता है

''घूंघट बइरी मोर– खुली के मारइ न देई नजरिया''

उपर्युक्त गीत की पंक्ति गोंड जाति के स्त्री–पुरुष शैला–करमा नृत्य के साथ भाव–विभोर होकर लय–ताल बद्ध ढंग से गाते हैं। इससे इस चित्र का मोहक रूप और अधिक सजीव लगने लगता है। इसी प्रकार कहीं–कहीं पर शिकार से संबंधित चित्र कला का भव्य रूप देखने को मिलता है। दीवारों पर मिट्टी का राजा तथा बहेलिया व सैनिकों आदि के चित्र भी बनाये जाते हैं। इन चित्रों को सेमी के पत्तों के रस से, चूना, गोबगेरू या कत्थे के रस से रंगा जाता है। इन चित्रों से संबंधित यहां का एक प्रचलित लोकगीत है

''राजा हॉका खेवइ जाइ जेठ के महिनवा,
आगे–आगे राजा चलई पीछे से शिकारी,
पामेइ न वियारी''

अर्थात जेठ का महीना है। राज शिकार खेलने को जाता है। आगे वह है, पीछे उसका प्रमुख शिकारी है साथ में तीन बहेलिया हैं। इन सबकी अभिलाषा यह है कि शिकार मारा जायगा और उसी की वियारी (सायंकाल का भोजन) करेंगे। दूर्भाग्यवश वियारी के लिये कोई भी शिकार हांथ नहीं लगता। दीवारों पर अंकित अस्थायी लोकचित्र संस्कारों, त्योहारों या विशेष अवसर पर बनाये जाते हैं। विवाह–संस्कार के समय दुअरी के चित्र कोहबर, तेलबाती, दूल्हादेव के चित्र विशेष मनोरंजक तथा सुहावने लगते हैं। चित्र में चुरइन के फूल–पत्ती, कलश, स्वास्तिक, ॐ तथा शुभ–लाभ आदि के चित्र अंकित किये जाते हैं। इन चित्रों में देशी हरे, नीले, पीले तथा लाल रंग उपयोग में लाये जाते हैं। कूँची या ब्रुश के स्थान पर एक पतली डंडी में रुई लपेटकर या बांस की कलम बनाकर रंग–रोगन किया जाता है। विवाह के अवसर पर बनने वाले चित्रों में कोहबर का विशेष महत्व है। विवाह के अवसर पर काष्ठ के टुकड़ों पर बनी हुई कलाएं विशेष मनोरम लगती हैं, जैसे पीढ़ा मगरोहन, सुआ–सुतौली आदि । इसी अवसर पर ''बरायन'' की संरचना जो मिट्टी के घड़े पर की जाती है, बड़ी ही कलात्मक व रसात्मक लगती है। मिट्टी के पके हुये घड़े को सफेद मिट्टी (घूदी) से पोतते हैं। सूख जाने को बाद उसके चारों ओर गोबर की बेल–बूटेदार वृत्ताकार आकृतियां बनाई जाती हैं। गोबर के सूखने पर इन्हें गुलाबी तथा नीला रंग से (जहां जैसी आवश्कता हो) रंग दिया जाता है। कहीं–कहीं तो चनों की दालों से गोबर पर आकृतियां अंकित की जाती है, रंग–रोगन नहीं किया जाता है। इसके अन्दर चूड़ी–सेन्दूर आदि रखा जाता है। यह वर पक्ष एवं कन्या पक्ष दोनों के घरों में तैयार किया जाता है। कन्या पक्ष के बरायण में ''खिचड़ी'' (चावल दाल का मिश्रण) रखकर समधी को दिया जाता है। यह परम्परा इस तथ्य का बोधक है कि वर कन्या दोनों का जीवन हरा–भरा रहे व सुख शांति बनी रहे। संस्कारों के अलावा त्यौहारों पर भी सम–सामयिक चित्र बनाये जाते हैं। वर्षा की रिमझिम बूंदों के साथ अषाढ़–सावन का मनभावन महीना प्रारंभ हो जाता है। गांव–गांव में झूला कजरी, हिंडुली, दादरा के मादक लोकगीत नवांगनाओं के कोकिल कंठों से फूट पड़तें हैं।[3]

हरी रामा बेला फुलइ आधी रात,
चमेली भिनसारे रे हारी ।।

ऐसे बेला–चमेली के गीत न जाने कितने हृदयों में प्रीति पैदा कर देते हैं। नागपंचमी का त्योहार है। यहां के निवासी अपने–अपने घरों की दुआरी पर नागों का चित्र मिट्टी या गोबर से बनाते हैं। नागों के पास से दूध–कटोरा लिये एक युवती का चित्र भी बनाया जाता है। यह परम्परा लोक संस्कृति से जुड़ी हुई नागपूजा भारतीय जनता की अस्था व विश्वास को निर्बल नहीं बल्कि सबल बनाती है। ऐसी लोक मान्यता है कि राज परीक्षित ने तक्षक से बचने के लिये नौ पर्तों का महल बनवाया था। फिर भी तक्षक से अपने प्राण की रक्षा नहीं कर पाये। अतः नागदेवता शक्तिवारन हैं, शेषनाग के अंशज–वंशज है जो धरती–धर होने के नाते पूज्य हैं, आराध्य हैं। एक लोक मान्यता है कि बघेलखण्ड में नागपंचमी से संबंधित यह प्रचलित है कि

जेहि दिन दूध पिअत हमा नाग।
ओहि दिन होत हइ तीजा–फाग।।

अर्थात जिस दिन नागपंचमी का त्योहार मनाया जाता है ठीक उसी दिन तीजा (भादों में) तथा होली–फाग का त्योहार पड़ता है। ऐसा विश्वास, ऐसी ग्राम–धारणा यहां के लोक जीवन में व्याप्त है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष ये है कि बघेलखण्ड में कला, संस्कृति और लोक कलाओं की विकास यात्रा विविधताओं से परिपूर्ण ही नही बल्कि विविध रंगों से सुसज्जित है। यहां की लोक गाथाएं, लोक कथाएं लोकोक्तियां, बघेलखण्डी लोक संस्कृति, इतिहास, साहित्य के संवाहक हैं।[4]

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. वाक पत्रिका वर्ष 2009 दरियागंज नई दिल्ली, पृष्ठ 25
2. अक्षरा पत्रिका राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार समिति भोपाल, जनवरी 2009 पृष्ठ 43
3. ज्ञानोदय 13 मार्च 2004 मासिक साहित्यिक पत्रिका लोदी रोड नई दिल्ली, पृष्ठ 35
4. अमर उजाला समाचार पत्र इलाहाबाद 3 जनवरी 2008 पृष्ठ 6
5. विन्ध्य भारती शोध पत्रिका मई 2008 अवधेश प्रताप सिंह वि.वि. रीवा पृष्ठ 26,35
6. दैनिक जागरण, समाचार पत्र रीवा 2 अगस्त 2008 पृष्ठ 6
7. नई दुनिया समाचार पत्र जबलपुर, 2009
8. स्वयं का सर्वेक्षण व निष्कर्ष